International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Volume 01, No. 03, July - September, 2019, pp.157-164

मीडिया के प्रभाव से बदलता जनमत

डॉ. शीतल प्रसाद महेन्द्रा*

प्रस्तावना

जनमत

जनमत से अभिप्राय समाज में प्रचलित उन विचारों या निर्णयों से है, जो लगभग निश्चित हैं, जिनमें स्थिरता है और जो समाज के एक बड़े वर्ग के लोगों में समान रूप से स्थित होते हैं। जनमत सार्वजनिक समस्या से सम्बन्द्ध होता है। यह सामान्य जनता का मत होता है, किसी विशिष्ट व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का नहीं। लोकमत में यह शक्ति है जो किसी भी निरीह, शोषित और उत्पीड़ित समुदाय को समय आने पर विद्रोह का ध्वजवाहक और क्रांति का उद्घोशक बना देती है। प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक **जेम्स ब्राइस** (1838–1922) ने राजनीति के आधुनिक सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन में उन्होंने लिखा है –''एक समुदाय के सदस्य जनसाधारण के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं पर जो भी विचार रखते है उन सबके सामूहिक रूप को जनमत की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें सब कुछ शामिल है विश्वास, रूढ़ीयाँ, उपलब्धियाँ, आशाएँ, आकाँक्षाएँ और सब प्रकार की कुण्ठाएँ। ये विचार प्रायः अस्पष्ट, असंगत और अत्यन्त परिवर्तनशील होते हैं और इनका रूप प्रतिदिन या प्रति सप्ताह बदलता रहता है।''

''लोकमत'' की व्याख्या मार्क्सवादी अपने ढंग से करते हैं। उनके तर्क के अनुसार वे राजसत्ता यानी स्टेट को शासक वर्ग के हाथ की कठपुतली मानते हैं उनका यह सिद्धान्त है कि किसी भी राजनीतिक–सामजिक ढांचे की बुनियाद वर्ग संघर्ष पर टिकी होती है और राजसत्ता अर्थात् हुकूमत तो शासक या शोषक वर्ग की ओर से व्यवस्था चलाने वाली कार्यकारिणी समिति होती है। अतः पूंजीवादी व्यवस्था में पूंजीपतियों या उनके प्रभाव में आए हुए लोगों के विचारों को ही ''लोकमत'' के रूप में मान्यता दी जाती है। इस का एक कारण यह भी है कि पूंजीवाद में शिक्षा के संस्थानों, जन संचार के माध्यमों (प्रेस, रेडियो, टेलीविजन आदि) और सांस्कृतिक सुविधाओं पर साधन सम्पन्न लोग अपना अधिकार जमा लेते है साधनहीन और शोषित वर्ग को आत्माभिव्यक्ति के साधन उपलब्ध नहीं होते। यही अवस्था उन देशों या उपनिवेशो की जनता की भी है जो साम्राज्यवाद की गुलामी की शिकार है। वहाँ के लोगों की आवाज को दबा दिया जाता है और उनके नाम पर विदेशी शासक या उनके क्रीतदास जो कुछ कहें उसे लोकमत की संज्ञा दे दी जाती है। हर देश या काल में हर समय आप देखेंगे कि कुछ न कुछ विश्वास, सिद्धान्त व आदर्श प्रचलित रहते हैं। कई प्रकार के द्वेष और पक्षपात या अन्य विकार हमारी चेतना को आन्दोलित करते रहते हैं। इन सब को उस देश और काल के प्रसंग अनुसार जनमत कहा जाता है। जनमत समाज के मौलिक घटकों (व्यक्तियों) की प्रतिक्रियाओं का प्रस्तुतिकरण है। वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी–अपनी सम्मति का एक समान मूल्य है।

पीत पत्रकारिता और जनमत निर्माण

पीत पत्रकारिता (Yellow Journalism) उस पत्रकारिता को कहते हैं जिसमें सही समाचारों की उपेक्षा करके सनसनी फैलाने वाले समाचार या ध्यान–खींचने वाले शीर्षकों का बहुतायत में प्रयोग किया जाता है। इससे समाचारपत्रों की बिक्री बढ़ाने का घटिया तरीका माना जाता है। पीत पत्रकारिता में समाचारों को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है, घोटाले खोदने का काम किया जाता है, सनसनी फैलायी जाती है, या पत्रकारों द्वारा अव्यवसायिक तरीके अपनाये जाते हैं। सेंटर फॉर मास कम्यूनिकेशन सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ झारखण्ड के सहायक आचार्य राजेश कुमार के अनुसार पत्रकारिता के बदलते परिदृश्य में संदेशों को विभिन्न तरीके से जनसमूह के समक्ष पेश करने की होड़ मची है। लगातार यह प्रयास हो रहा है कि संदेश कुछ अलग तरीके से कैसे प्रकाशित प्रसारित हो। इस होड़ ने प्रयोग को बढ़ावा दिया है, जिससे समाचारों के प्रस्तुतीकरण का तरीका थोड़ा रोचक जरूर लगता है, लेकिन यह बनावटी है। इसके पीछे होने वाले तथ्यों के तोड़ मरोड़ और सनसनीखेज बनाने की प्रवृति ने कई विकृतियों को जन्म दिया है, जो पीत पत्रकारिता के दायरे में आता है।

* सहायक आचार्य, स्व.राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदीकुई, राजस्थान।

समाचारों के प्रस्तुतीकरण से जुड़े प्रयोग पहले भी होते रहे हैं, लेकिन उनमें पत्रकारिता के बुनियादी सिद्धांतों के साथ कभी समझौता नहीं किया गया। यह विकृति विकसित देशों की पत्रकारिता से होते हुए विकासशील देशों तक पहुंची है और आज एक गंभीर समस्या का रूप धारण कर चुकी है। इसकी प्रमुख वजह विकसित देशों को मॉडल मानकर उनके पत्रकारिता के प्रयोगों को बिना सोचे समझे अपनाना है। पीत पत्रकारिता इसकी ही देन है। वैश्वीकरण के बाद जिस तरीके से समाचारों के प्रस्तुतीकरण का तरीका बदला है और बदलता जा रहा है। इसने कई सवाल खड़े किए हैं। ऐसा नहीं है कि ये सवाल सिर्फ आज से जुड़े हैं। पहले भी थे और भविष्य में भी होंगे, लेकिन इसकी गंभीरता को अब महसूस किया जाने लगा है। कई स्तर पर इस मुद्दे को लेकर बहस जारी है। हर समाचार संगठन यह दावे के साथ कहता है कि वह स्वस्थ पत्रकारिता का पोषक है और समाचार प्रस्तुतीकरण के क्षेत्र में होने वाले सारे प्रयोग पत्रकारिता के सिद्धांतों और आचार संहिता को ध्यान में रखकर किया जा रहा है, लेकिन सच्चाई यह है कि पत्रकारिता ने एक नया चोला पहन लिया है, जो सिर्फ व्यवसाय की भाषा समझता है। इसके लिए नए नए तरीके ढूढे गए हैं। हर तरीका जाने अनजाने में पीत पत्रकारिता को बढ़ावा देता है।

सूचना क्रांति के इस दौर में इंफोटेनमेंट और एडुटेनमेंट किसी भी समाचार संगठन की संपादकीय नीति का अहम हिस्सा बन गया है। तकनीकी रूप से इंफोटेनमेंट कहने का अर्थ सूचना को मनोरंजन के साथ और एडुटेनमेंट का अर्थ शिक्षा को मनोरंजन के साथ प्रस्तुत करना है। इसने समाचारों में घालमेल की स्थिति उत्पन्न कर दी है। सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का ऐसा घोल तैयार किया गया है, जिसमें समाचार और विचार के बीच फर्क करने में परेशानी हो रही है। सूचना और मनोरंजन के संयोजन में तथ्यों के तोड़ मरोड़ की प्रक्रिया ने पत्रकारिता के मूल सिद्धांतों को ही चुनौती दे दी है। इन प्रवृतियों के बीज पीत पत्रकारिता में निहित हैं। बाजारवादी ताकतों ने पत्रकारिता को मिशन की जगह व्यापार का स्वरूप प्रदान कर दिया। इसे ध्यान में रखते हुए कई बड़े राजनीतिक और व्यावसायिक घरानों का पत्रकारिता के क्षेत्र में आगमन हुआ, जिनका मुख्य उद्देश्य जनसेवा न होकर समाज और सत्ता पर नियंत्रण बनाए रखना है। उन्हें यह भली भांति मालूम है कि पत्रकारिता एक ऐसा जरिया है जिससे जनसमूह में पैठ बनाई जा सकती है। उन्होंने जनसमूह को आकर्षित करने के लिए उनकी रुचियों को बदलने का प्रयास किया, जो पीत पत्रकारिता के तरीकों से ही संभव हुआ।

बदलते पत्रकारीय परिदृश्य में प्रबंधन ने तथ्यों को तोडने मरोडने, समाचार को सनसनीखेज बनाने, चटपटी कहानियाँ प्रस्तुत करने और भडक़ाऊ चित्रों को प्रकाशित प्रसारित करने को संपादकीय नीति का हिस्सा बना दिया। संपादकों पर ऐसा करने का दबाव डाला गया। धीरे–धीरे पीत पत्रकारिता समाज में अपनी जड़ें मजबूत करता गया। इस परिस्थिति ने छोटे और मझोले पत्रकारिता संगठनों के लिए बड़ी मुसीबत खड़ी कर दी और प्रबंधन के बनाए मापदंडों के अनसुरण को बाध्य किया। कई सैद्धांतिक रूप से मजबूत समाचार संगठन भी डगमगाने लगे, लेकिन कुछ ने अब भी संतुलन बनाए रखा है और पीत पत्रकारिता को संपादकीय नीति का हिस्सा नहीं माना है। पत्रकारिता की साख बनाए रखना हमेशा से चुनौतीपूर्ण रहा है, क्योंकि इसमें निम्न सिद्धांतों का पालन करना अत्यंत आवशयक होता है– 1. यथार्थता, 2. वस्तुपरकता, 3. निष्पक्षता, 4. संतुलन, 5. स्रोत।

एक पत्रकार के लिए समाचार प्रस्तुतीकरण के दौरान संतुलन का ध्यान रखना अत्यंत जरूरी होता है। यदि वह किसी एक पक्ष को ध्यान में रखकर काम कर रहा है तो वह पूर्वाग्रह से ग्रसित है। इसका तात्पर्य है कि किसी एक पक्ष को फायदा पहुंचाने और दूसरे पक्ष की छवि बिगाडने के लिए वह तथ्यों के साथ खेल रहा है और समाचार को तोड मरोड़ कर पेश कर रहा है, जो पीत पत्रकारिता है। स्रोत एक अहम जरिया है जो इस बात की पुष्टि करता है कि कोई घटना सही मायने में (कब, कहाँ, क्या, कौन, कैसे और क्यों) घटित हुई है। आज की पत्रकारिता में बिना स्रोत के भी समाचार लिखे जा रहे हैं। उनका चुनाव भी राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को ध्यान में रख कर किया जा रहा है। यह पत्रकारीय सिद्धांतों के खिलाफ है और पीत पत्रकारिता को बढ़ावा देता है। समाचार पत्रों ने प्रसार संख्या और टीवी की टी.आर.पी बढ़ाने के लिए हर हथकंडे अपनाए। विभिन्न तरीकों से पत्रकारों को अपनी ओर खींचने का प्रयास किया गया और कुछ अलग कर दिखाने की नसीहत दी गई। पीत पत्रकारिता का भयावह रूप तब देखने को मिला, जब न्यूयार्क वर्ल्ड और न्यूयार्क जर्नल ने अमेरिका और स्पेन के बीच युद्ध को हवा दी। दोनों पत्रों ने इसे प्रसार संख्या बढ़ाने और राष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रभुत्व कायम करने के अवसर के रूप में लिया। लगातार ऐसे समाचारों का प्रकाशन हुआ, जिसने युद्ध को अवश्यंभावी बना दिया। पीत पत्रकारिता की औपचारिक शुरुआत का यह दौर आने वाले समय के लिए एक खतरा बन गया। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध में भी पत्रकारिता का जमकर दुरुपयोग हुआ। जनसमूह को अपने पक्ष में करने के लिए संदेशों के साथ खिलवाड़ आम बात रही। इसके लिए पत्रकारिता के सभी साधनों पर नियंत्रण कर कई देशों को युद्ध करने पर मजबूर किया गया, जबकि कई देशों पर युद्ध थोपा गया। यह दौर आगे भी चलता रहा।

जनसंचार के नए माध्यमों रेडियो, टीवी और न्यू मीडिया के आगमन के बाद प्रतिस्पर्धा का एक नया दौर शुरू हुआ, जिसने पीत पत्रकारिता को बढ़ावा दिया। नये मीडिया ने तो पीत पत्रकारिता को उच्च गति से बढ़ावा दिया। पहले सिर्फ पत्र पत्रिकाओं के बीच प्रसार संख्या और विज्ञापन को लेकर होड़ थी, लेकिन रेडियो के बाद टीवी और फिर टीवी के बाद न्यू मीडिया के आने से यह होड़ काफी बढ गई। पत्रकारिता का परिदृष्य एकदम बदल गया। बाजार में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए हर माध्यम को काफी जद्दोजहद करनी पड़ी। सबसे तेज और सबसे अलग दिखने वाले इस माहौल में पत्रकारीय भूल आम बात हो गई, जिससे पीत पत्रकारिता को हर माध्यमों के जरिए पनपने का अवसर मिला। 1977 में आपातकाल के बाद जब जयप्रकाश नारायण ने दिल्ली में रैली का ऐलान किया तो दूरदर्शन ने रैली को कथित तौर पर असफल दिखाने का प्रयास किया। इसके लिए दूरदर्शन ने पूरी ताकत झोंक दी। कैमरे उन्हीं जगहों पर लगाए गए थे, जहां लोग कम दिखाई दे रहे थे। रात के प्रसारण में दूरदर्शन ने इस रैली को असफल साबित कर दिया, लेकिन पत्र पत्रिकाओं ने अपने कवरेज से इसकी पोल खोल दी। जयप्रकाश नारायण को लाखों लोगों को संबोधित करते हुए दिखा गया। इन्हीं भूमिकाओं के कारण दूरदर्शन पर सरकारी भोंपू का ठप्पा लग गया। पीसी जोशी समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में दूरदर्शन की भूमिका को नाकाफी बताया। उन्होंने कहा कि यह असली भारत का चेहरा नहीं दर्शाता। देश के विकास की तस्वीर बदलने में यह महती भूमिका निभा सकता है, हालांकि मनोरंजन के मोर्चे पर दूरदर्शन के कार्यक्रमों में साफ सुथरापन नजर आया। हमलोग, बुनियाद, रामायण और महाभारत जैसे कार्यक्रमों ने समाज को एक स्वस्थ संदेश दिया, जिसमें पीत जैसी कोई बात नहीं थी।

वैश्वीकरण का असर भी भारतीय पत्रकारिता पर साफ दिखा, जब पश्चिमी देशों में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की नकल की गई। 1995 में जीटीवी ने इंडियाज मोस्ट वांटेड नामक कार्यक्रम के जरिए अपराध जगत से जुड़ी समाचारों का प्रसारण शुरू किया। यह पूरी तरह ब्रिटेन और अमेरिकी टीवी चैनलों में प्रसारित होने वाले कार्यक्रम की नकल थी। भारतीय दर्शकों ने इसे काफी पसंद किया। इसे भांपते हुए एक के बाद एक चैनल इस तरह के कार्यक्रमों की कड़ी में जुड़ गए। सनसनी और क्राइम रिपोर्टर जैसे कार्यक्रमों ने सनसनाहट पैदा कर दिया। यह चैनलों की मजबूरी भी रही कि उन्हें 24 घंटे कुछ न कुछ प्रसारित करते रहना है। प्रसारण भी ऐसा हो, जो टीआरपी, विज्ञापन और दर्शक बनाए रखे, इसलिए उन्होंने पश्चिमी देशों के कई कार्यक्रमों की नकल करने में भी कोई गुरेज नहीं की। आज जीटीवी, एनडीटीवी, आज तक, स्टार न्यूज, सहारा, सीएनबीसी, सीएनईबी, पी सेवन, टाइम्स नाउ, इंडिया टीवी और इंडिया न्यूज सहित सैकड़ों ऐसे चैनल हैं, जो ऐसा कर रहे हैं। इस रूझान का नकारात्मक प्रभाव यह हुआ कि हर कार्यक्रम को मसालेदार और सनसनीखेज बनाने का दबाव बढ़ता गया। समाचार मूल्य पर मनोरंजन मूल्य हावी हो गया। हर मीडिया समूह ट्रिपल सी (क्रिकेट, क्राइम और सिनेमा) फार्मूले पर काम करने लगा। इसने अन्य मुद्दों को हाशिए पर भेज दिया। इसके अलावा ब्रेकिंग न्यूज, सबसे तेज, सबसे पहले की हड़बड़ी में मीडिया ने कई भारी भरकम भूलों को अंजाम दिया। कई बार गैर जिम्मेदाराना और आपत्तिजनक प्रकाशन प्रसारण ने तो पत्रकारिता पर लगाम लगा ने की बहस नए सिरे से छेड़ दी।

बीसवीं सदी के अंत तक जनसंचार के सशक्त माध्यम के रूप में न्यू मीडिया का आगमन भी हुआ, जिसने आते ही अपनी धमक दिखा दी है। आज जिस न्यूज पोर्टल पर नजर डालिए, उसमें समाचार लिंक के अलावा कई ऐसे लिंक हैं, जो सेलिब्रिटी और सेक्स से जुडे हैं। कई चटपटी खबरें आसानी से मिल सकती हैं। ये लिंक भी ऐसे होते हैं, जिसमें एक के बाद एक कई समाचारों को पाठक पढ़ सकता है। वीडियो देखने की सुविधा भी उपलब्ध होती है। न्यूज वेबसाइट का एक कोना ऐसा भी होता है, जिसमें मॉडलों और सेलिब्रिटी की हजारों तस्वीरें होती हैं। इसके अलावा भी कई तरह की लिंक होती हैं, जो सूचनात्मक हैं, लेकिन जिस तरीके से एक वेबसाइट को सजाया जाता है, उससे यह साफ प्रतीत होता है कि कुछ प्रमुख समाचारों को छोडक़र ज्यादातर जोर मॉडल और सेलिब्रिटी वाले भाग पर है। टाइम्स ऑफ इंडिया और नवभारत टाइम्स इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिसका अनुसरण अन्य न्यूज पोर्टल भी कर रहे हैं। आजकल भारतीय मीडिया में केंद्रीयकरण लगातार बढ़ता जा रहा है, जिस कारण कुछ समाचार समूहों का एकछत्र राज कायम हो गया है। वे जो प्रकाशित प्रसारित करते हैं, उन्हें ही समाचार या विचार माना जाने लगा है। बड़े समूह के इस दाव पेच ने अन्य छोटे और मझोले समाचार समूह के लिए भारी मुसीबत खड़ी कर दी है। इस कारण ये कुछ समय बाद दम तोड़ देते हैं। किसी भी समाचार समूह के लिए प्रसार संख्या, टीआरपी और विज्ञापन सबकुछ हो गया है, लेकिन जैसे ही छोटे व मझोले समाचार समूह बड़े समूहों को चुनौती पेश करते हैं। इनसे निपटने के लिए कई हथकंडे अपनाए जाते हैं। मसलन राजनीतिक और आर्थिक दबाव से उन्हें बर्बाद करना। एकाधिपत्य का फायदा उठाते हुए उन्हें मजबूरन ऐसे समाचारों के प्रकाशन प्रसारण के लिए बाध्य करना, जिसके लोग आदी करवाए जा चुके हैं। इस प्रवृति को तोडऩा छोटे व मझोले समूहों के लिए कठिन होता जा रहा है और वे धीरे–धीरे मीडिया परिदृश्य से गायब हो रहे हैं।

चुनाव और मीडिया

1952 में भारत में पहला आम चुनाव हुआ था और उस समय प्रमुख समाचार पत्रों ने चुनावी कवरेज को प्रमुखता से स्थान दिया था। हिन्दुस्तान, नेशनल हेराल्ड, नवभारत टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया जैसे प्रमुख समाचार पत्र थे। चूंकि समाचार पत्रों का विकास ज्यादा नहीं था। मगर उस वक्त दो दलीय व्यवस्था थी जिसके चलते चुनाव कोई जटिल कार्य नहीं होता था। काफी सादगी से चुनाव हुआ करते थे। टी.एन. शेषन से पहले किसी भी चुनाव आयोग के अधिकारी के बारे में देश की आम जनता जानती तक नहीं थी। भारत जैसे देश की जहाँ 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि जैसे क्षेत्र से जुड़ी हैं। उसमें भी 40 प्रतिशत जनसंख्या निरक्षर हैं (यूनिसेफ की रिपोर्ट के मुताबिक) उन्हें तो ये मालूम ही नहीं था कि चुनाव आयोग नाम की भी कोई संस्था है। मगर 1993 के बाद से जबसे सूचना क्रांति का दौर शुरु हुआ देश की परिस्थितियाँ ही बदल गई।

अब हर वो आदमी जिसके पास वोट देने का अधिकार है अपने हक को लेकर काफी जागरुक हो गया है। इसका श्रेय काफी हद तक मीडिया को जाता है। अब जनमानस तक कोई भी बात पहुँचाने का अच्छा जरिया है मीडिया। मीडिया पहले भी था मगर सीमित संसाधन के चलते ऐसा संभव नहीं हो पाता था। मगर आज परिस्थितियाँ बिल्कुल उलट है। आज तो हालात ये हैं कि यहाँ हादसा हुआ, वहां सैकड़ों, हजारों किलोमीटर दूर बैठे हुए समाचार चैनलों के जरिए उसे पल में देखा जा सकता है। राजनीति में गंदगी पहले भी थी मगर आज से तुलना करें तो पहले की राजनीति में कुछ संवेदनाएँ और सियासी दलों में समाज के लिए कुछ करने की ललक थी। मगर आज उस ललक के मायने बदल गए हैं। चुनाव के दौरान तो माननीय नेतागण साम–दाम, दंड, भेद की राजनीति करते हैं और अपने इस राजनीतिक दलदल में वो इस कदर धंस गए है कि उनकी हालत ऐसी है जैसे सावन का अंधा जिसे चारों तरफ हरा ही हरा दिखाई देता है।

चुनावों के समय मीडिया का सही रूप देखने को मिलता है। प्रत्याशियों के अच्छाइयों और बुराइयों का सही तरीके से विश्लेषण मीडिया ही करती है। कई बार तो जब राजनेता गलत तथ्यों से मतदाताओं की आंखों में धूल झोंकने का काम करते हैं तब मीडिया उन तथ्यों से अवगत कराने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ती। मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने राजनेताओं को संकट में डाल दिया है। कारण साफ है लगातार मीडिया की भूमिका बढ़ती जा रही है। चैनलों का विस्तार हो रहा है, समाचार पत्रों की संख्या में प्रसार हो रहा है। पहले यह कहा जाता था कि मीडिया मैनेज हो जाता है, अब कहा जाता है किस–किस को मैनेज करेंगे। आप एक नहीं दो नहीं सैकड़ों की तादात में मीडिया विस्तार के रूप में जनता के सामने खड़ी है। ऐसे में सबके सामने संकट की दीवार है। चुनावों के समय मीडिया के विश्लेषणात्मक रूप को देखकर राजनेता उलटी सीधी बयानबाजी करने से बचने लगे हैं। चुनावों में किसने क्या वादे किये किसने क्या निभाया सारा सच सामने रखकर मीडिया प्रत्याशियों से बात करती है। जनता की मनःस्थितियों से अवगत कराती है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम हो या फिर समाचार पत्र। जनता की आवाज को जननेताओं तक पहुंचाने में मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गयी है। अब किसी को यह कहते नहीं सुना जा सकता है कि फला चैनल या समाचार पत्र फला पार्टी का समर्थन कर रहा है। जो सच्चाई है वह मीडिया परोस रहा है।

कांग्रेस ने विस्तार के साथ टेलीविजन प्रबंधन पर ध्यान दिया। बहुभाषी चैनलों का जमकर इस्तेमाल किया। मीडिया के इतिहास में सन् 1971 के चुनाव के बाद कांग्रेस का इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का यह सबसे प्रभावशाली राजनीतिक दोहन था। सन् 1971 में स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी ने रेडियो मीडियम का प्रभावशाली इस्तेमाल करके प्रचार के मैदान में सबके छक्के छुड़ा दिए थे और रेडियो के तत्कालीन आक्रामक प्रचार के गर्भ से अधिनायकवाद का खतरा पैदा हुआ। ठीक वैसा ही आक्रामक रुख इस बार टीवी चैनलों की प्रस्तुतियों में दिखाई दिया है। चैनलों में आने वाले 'प्रबुद्ध' शिक्षित बौद्धिकों और पत्रकारों ने सचेत रूप से अपना ज्यादातर समय उन विषयों को दिया जो अप्रासंगिक थे अथवा लोकसभा चुनाव के लिहाज से हाशिए के विषय थे।

इस बार टीवी टॉक शो कार्यक्रमों में चंद संपादकों, पत्रकारों, राजनीतिक विश्लेषकों और पार्टी प्रवक्ताओं का ही वर्चस्व था, आम आदमी की राय का कवरेज नगण्य था। कभी–कभार किसी चुनाव क्षेत्र में हल्ला–गुल्ला मचाते हुए आम आदमी नजर आता था और यही वह बिंदु है जहाँ आम आदमी को सबसे ज्यादा हेय बनाकर पेश किया गया। यह आम आदमी विचार के लिहाज से अनुपयोगी और वोट के लिहाज से उपयोगी था। इसलिए क्षेपक की तरह कभी–कभार 'हल्ला–गुल्ला' करता दिखता था।

सार्वजनिक स्थानों पर जो चुनावी बहसें हुईं उनके बारे में यह तथ्य सभी लोग जानते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सामने बोलने की कला में अभी तक हमारे अधिकांश उम्मीदवार, उनके समर्थक और साधारणजन माहिर नहीं हैं। साधारण लोगों से आमतौर पर मूर्खतापूर्ण सवाल किए जाते हैं।

बिजली, सडक़, पानी, उद्योग आदि के संदर्भ में सवाल पूछते हुए तथ्यपरक जानकारी को दर्शकों के सामने कभी पेश नहीं किया गया। एंकर यह मानकर चल रहे थे दर्शक ज्ञानी है, वह सब कुछ जानता है। दर्शक अपनी जरूरतों को तो जानता है किंतु उससे संबंधित तथ्यपूर्ण जानकारी का आमतौर पर उसके पास अभाव होता है। सवाल को सरलीकृत करके पेश करना और सरलीकृत रूप में हाँ या ना के रूप में उत्तर की तलाश ही वह जगह है जहां पर मीडिया आम आदमी की बुद्धि का शोषण करता है। उस पर अपनी धाक जमाने की कोशिश करता है। समस्या की जटिलता को छिपाना और जटिलता को न देखना ये दोनों ही फिनोमिना टीवी प्रस्तुतियों का हिस्सा हैं।

आज के युग का सबसे बड़ा प्रचारक है टेलीविजन, पार्टी संगठन नहीं। टेलीविजन ने प्रचार के सभी पुराने तंत्रों और रूपों को अपने अंदर समेट लिया है अथवा अपनी संगति में विकसित करने पर जोर दिया है। जो माध्यम ऐसा नहीं कर पाता उसे टेलीविजन निगल जाता है। टेलीविजन आधुनिक युग का डायनोसर है। यह सबको खा सकता है इसे कोई नहीं खा सकता। पुरानी भाषा में कहें तो टेलीविजन अजर, अमर और अबध्य है। इस पर कोई सवारी नहीं कर सकता बल्कि यही सबके ऊपर सवारी करता है। टेलीविजन परवर्ती पूंजीवाद की चालकशक्ति है। सभी किस्म के प्रचार अभियान और विचारधारा विमर्श का मूल स्रोत है। चैनल खोलकर, चैनलों का स्वामित्व अपने पास रखकर टेलीविजन को नचा नहीं सकते। टेलीविजन का मालिक कोई भी हो इसे मालिक नहीं नचाता बल्कि टेलीविजन सबको नचाता है। टेलीविजन में अंतर्वस्तु का महत्व नहीं है 'फ्लो' और 'प्रक्रिया' का महत्व है। ये दोनों तत्व टेलीविजन को सर्वोपरि स्थान दिलाते हैं।

भाजपा पहला राजनीतिक दल है जिसने परंपरागत प्रचार अभियान के साथ–साथ 'ई–प्रचार' पर जोर देने का फैसला लिया। सन् 2004 में सुनियोजित ढंग से भाजपा ने अपने प्रचार खर्च का पांच फीसदी हिस्सा 'ई–प्रचार' पर खर्च करने का निर्णय लिया था, इसके लिए जनसंपर्क प्रचार कंपनियों की मदद ली गई। अनेक वेबसाइट तैयार की गईं। जो वेबसाइट पहले से थीं उन्हें अपडेट किया गया। वेब के जरिए संवाद, पाठ, पूर्व रिकॉर्डेड आवाज की क्लिपिंग, ईमेल, एसएमएस आदि किए गए। दो करोड़ मोबाइल उपभोक्ताओं को प्रचार से संबंधित धुन मुहैया कराई गई। यह सब करने के बावजूद उस समय 'इंडिया शाइनिंग' का प्रचार आम लोगों को प्रभावित नहीं कर पाया। इस प्रचार अभियान से भाजपा को कोई लाभ नहीं मिला किंतु उसने भारत में चुनाव का एक नया रास्ता तैयार कर दिया। उसके बाद प्रिंट, आउटडोर, टीवी–रेडियो, इंटरनेट आदि का चुनाव–प्रचार में इस्तेमाल करने की परंपरा और कितना प्रतिशत खर्चा किस माध्यम पर किया जाए इसका मोटा सा वर्गीकरण भी बाजार में आ गया। सन् 2004 के बाद मतदाताओं की संख्या और प्रकृति में तेजी से परिवर्तन आया हे। आज आधे से ज्यादा मतदाता युवा हैं। सन् 2004 में मोबाइल के यूजर थे 26 मिलियन लोग और सन् 2009 में यूजर हैं 365 मिलियन लोग। सन् 2004 में इंटरनेट यूजर थे 16 मिलियन लोग सन् 2009 में यह संख्या बढक़र 80 मिलियन हो गई है। इस सबको मद्देनजर रखकर भाजपा ने बड़े पैमाने पर इंटरनेट का प्रचार के रूप में इस्तेमाल करने का फैसला लिया, इस फैसले के पीछे अमरीकी राष्ट्रपति ओबामा की सफलता का भी प्रभाव था।

इंटरनेट और मोबाइल प्रभावशाली माध्यम हैं। किंतु हमारे देश की जनता अत्याधुनिक संचार की बजाय परंपरागत संचार से ज्यादा प्रभावित होती है। टेलीविजन से ज्यादा प्रभावित होती है। यह बात अनेक सर्वेक्षणों के जरिए पुष्ट हो चुकी है कि परंपरागत संचार अभी भी आधुनिक संचार से ज्यादा ताकतवर है बशर्ते आपके पास संगठन हो। ब्लॉग, वेबसाइट, टीवी टॉक शो, मोबाइल संदेश अभी परंपरागत सांगठनिक प्रचार को अपदस्थ नहीं कर पाए हैं। व्यक्ति का संवाद ज्यादा प्रभावशाली रहता है। प्रचार को चमकदार बनाने में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और अन्य संचार क्रांति के उपकरणों सहयोगी हो सकते हैं। प्रचार का मूल अस्त्र नहीं हो सकते। मीडिया के लिए भी आचार संहिता बनाई है कि किस प्रकार वह चुनावों में अपनी भूमिका अदा करे। भारतीय प्रेस परिषद ने अपने निर्देशों में साफ तोर पर जिक्र किया कि कही से यह नहीं लगना चाहिए कि किसी प्रकार से बायस्ड (मुखर) होकर मीडिया किसी एक की बात को प्रकाशित कर रहा है। बल्कि अब तो यह कहा जाने लगा है कि मीडिया ने अपने स्वरूप में काफी हद तक बदलाव किया है। तथ्यों को तोड़–मरोडक़र प्रकाशित या प्रसारित किए जाने वाली खबरों में अब दम नहीं रह गया है। अगर एक गलत तरीके से प्रकाशित/प्रसारित करता है तो दूसरा उसे सही तरीके से प्रकाशित/प्रसारित करता है। ऐसे में वहां भी मीडिया को चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।

आधुनिक संसाधनों का जनमत निर्माण में प्रयोग

जनमत–संग्रह, जिसे मत–संग्रह या सिर्फ जनमत भी कहते हैं, एक ऐसा प्रत्यक्ष मतदान है जिसमें किसी क्षेत्र विशेष के सभी मतदाताओं को मतदान के द्वारा किसी एक विशेष प्रस्ताव को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए कहा जाता है। दूसरे शब्दों में जनमत–संग्रह के माध्यम से सरकार की नीतियों या

किसी प्रस्तावित कानून के बारे में जनता की राय मालूम की जाती है। जनमत–संग्रह नये संविधान के निर्माण, वर्तमान संविधान में संशोधन, किसी नये कानून, किसी निर्वाचित सदस्य का निर्वाचन रद्द करने या केवल सरकार की किसी विशिष्ट नीति को स्वीकार या अस्वीकार करने से संबंधित हो सकता है। यह प्रत्यक्ष लोकतंत्र का एक रूप है। जनमत को रेखांकित करने के लिए विद्वानों ने कई सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

- यह जरूरी नहीं जो कुछ आप कहें सब सच्चाई ही सच्चाई हो। जरूरी तो यह है कि जनता को यह विश्वास हो जाए आप जो कुछ कह रहे है वह सच है। यह बात बिल्कुल वैसी ही है जैसे अदालत में दोनों पक्षों के वकील अपनी–अपनी बात को सच्ची कहते हैं लेकिन फैसला उसी के हक में होता है जिसकी सच्चाई पर न्यायाधीश को विश्वास हो जाए।
- प्रोपेगेण्डा में सफलता का पहला सोपान यह है कि वक्ता अपने श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें ताकि वे उसकी बात सुनें। सार्वजनिक सभाओं में, जहां विरोधी भी मौजूद हों, अपना पक्ष प्रस्तुत करने में संकोच नहीं होना चाहिए। क्योंकि अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए ऐसे मौके बड़े उपयोगी होते हैं।
- अगर आप समझते हैं कि अधिक संख्या में श्रोता आपके विरोधी हैं, तो समझ–बूझ से काम लें। लोगों को बहला–फुसला कर उनका समर्थन प्राप्त करने की कोशिश करें। जहाँ तक हो सके उनसे टकराव या झगड़ा मोल न लें क्योंकि आपके भाषण के दौरान अगर कोई गड़बड़ हुई तो नुकसान आपका है, आप अपनी बात नहीं कह पाएंगे।
- प्रोपेगेण्डा में भी एक युद्ध की तरह चालें चली जाती है जो भी किया जाए, शत्रु या विरोधी के लिए इतना अप्रत्याशित हो कि वह हैरानी या परेशानी में निष्क्रिय हो जाए।
- प्रोपेगेण्डा चाहे लोकतंत्र का हो या अधिनायकवादी व्यवस्था का, उस का मूल मंत्र होता है जनता को अपेक्षित दिशा में प्रेरित करना। प्रेरणा तभी सफल होती है जब लोग यह विश्वास कर लें कि उन्हें वही कुछ करने के लिए कहा जा रहा है जो उनके मन की पुकार है। यह भी हो सकता है कि उन्हें ठीक–ठीक यह भी न पता हो कि वे क्या चाहते हैं। लेकिन जब पब्लिसिटी उनके सामने एक संदेश लेकर जाती है तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि उनका मन उसकी गवाही देने लगता है। जनता के साथ इस प्रकार का मानसिक तालमेल स्थापित करने के लिए मनोविज्ञान के व्यावसायिक अनुभव की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। लोकसम्पर्क कर्ता यदि थोड़ी सी साधारण समझ बूझ से काम ले और ईमानदारी के साथ लोगों की भावनाओं को समझने की कोशिश करे और परिश्रम से मुंह न मोड़े, तो सफलता दूर नहीं।
- कई बार ऐसा भी होता है कि विश्वविद्यालयों में छात्र और छात्राएं उत्तेजना में आकर खिड़कियों के शीशे तोड़ डालते हैं या कोई और उपद्रव करते हैं। किसी को पता ही नहीं चलता कि ऐसा क्यों हुआ, या कोई शिकायत भी होती है तो बिल्कुल मामूली–सी। जिस पर इतनी गड़बड़ का कोई औचित्य नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति को निपटाने का एक तरीका तो यह है कि बल प्रयोग से छात्रों के इस दंगे फसाद को दबा दिया जाए। लेकिन ऐसा वही करते है जिनका दृष्टिकोण संकुचित होता है या जो पुलिस की तकनीकों के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। ''लोक सम्पर्क में विश्वास रखने वाला कोई भी व्यक्ति इस स्थिति को अपने ही तरीके से निपटायेगा। वह यह सोचेगा कि ये पढ़े लिखे युवाजन हंगामा करने और अपने अभिभावकों की कमाई बर्बाद करने के लिए तो विश्वविद्यालय में नहीं आते वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि यह दंगा फसाद तो एक बीमारी की निशानी है, जो बहुत गहरी है। अगर बीमारी का इलाज हो जाए तो यह निशानी यानी उपद्रव स्वतः ही बंद हो जाएगा।

प्रोपेगेण्डा में दो अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का लाभ उठाया जाता है। एक है संयुक्तिकरण का जिसे अंग्रेजी में ह्मड्डह्लद्बशठ्ठड्डद्यद्ब5ड्डह्लद्बशठ्ठ कहते है इसका मतलब है कि हम बहुत से फैसले तो अपने मन में छिपे हुए झुकावों के कारण पहले कर लेते हैं और फिर प्रकट करते समय या उनको कार्य रूप देते हुए उनके समर्थन में युक्तियां तलाश कर लेते है शादी ब्याह से लेकर चुनावों में मत देने तक के फैसले अक्सर हम अपने मन की गहराइयों से निकली प्रेरणाओं से प्रभावित होकर पहले कर लेते हैं, इसके बाद अपने फैसलों को सिद्धान्तों, आदर्शो और नैतिक मूल्यों या सांस्कृतिक अभिरूचियों के आधार पर युक्तियुक्त सिद्ध करते हैं। प्रोपेगेण्डा में सफलता उसी को मिलती है जो जनता के अवचेतन मन की छिपी प्रेरणाओं का लाभ उठा सके।

इसी सन्दर्भ में दूसरा सिद्धान्त है– पसंद या नापसंद के मूल रूपों का। कम्युनिस्ट विचारों के लोगों में ''बुर्जुआ'' कल्चर को बुरा समझा जाता है। इसलिए अगर कोई कम्युनिस्ट अपने किसी विरोधी को ''बुर्जआ'' या पूंजीवादियों का एजेंट कह दे तो उस व्यक्ति के प्रति कम्युनिस्ट लोगों के मन में गलत छवि बन जायेगी। इसका कारण यह है कि सभी लोगों ने अपने मन में अच्छाई या बुराई की धारणाएं स्थिर कर ली हैं। हमारे मन में जो मूल रूप से स्थिर हो जाए, उनको हम आसानी से छोड़ नहीं सकते, और हमारे लिये यह बहुत मुश्किल है कि प्रत्येक फैसला करने से पहले हम मामले की गहराई में जाएँ। जो कुछ हमारी पसंद की कल्पना में ठीक उतरेगा, हम तुरंत उसे अपना लेंगे या इसके विपरीत उसे नकार देंगे। इसलिए किसी के विरोध या समर्थन का प्रोपेगेण्डा खुले तौर पर या तो बढ़ा चढ़ा कर तारीफ करने से होता है या कड़वे कटाक्षों से, क्योंकि साधारण जनता अपनी पसंद या नापसंद के मुताविक इधर या उधर की अपनी राय बना लेती है– तर्क की गहराईयों में जाने के लिए न तो जनसाधारण में सामर्थ्य होती है और न ही कोई सुविधाएं।

जनता से जनमत हासिल करने के लिए जनता से लोकसम्पर्क बड़ी स्पष्टता से किया जाना चाहिए। लोकसम्पर्क उद्देश्यपरक होना चाहिए, सहनशीलता और सरलता से किया जाना चाहिए। लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली में पक्ष–विपक्ष के समर्थकों या इसके विरोधियों की तुलनात्मक गिनती को ही निर्णायक माना जाता है। इसलिए यह विश्वास बन गया है कि जिस पक्ष को बहुमत का समर्थन प्राप्त हो जाए, वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाता है, किन्तु इतिहास साक्षी है कि समाज में जितने भी बड़े–बड़े निर्णय हुए या क्रांतियां हुईं, उनके प्रवर्तक प्रायः बहुत थोड़े लोग थे। इसका कारण स्पष्ट है। मात्र विचार रखना एक बात है उसके लिए कुछ कर गुजरना कुछ और। फिर यह भी महत्वपूर्ण होता है कि इस मामले में हमारा विश्वास कितना दृढ़ है, हम अपने पक्ष को कहाँ तक समझते हैं और हम उसके लिए कितने समर्थकों को सक्रिय कर पाते हैं।

लोकसभा चुनाव 2014 मोदी लहर के बीच बीजेपी थ्री डी होलोग्राफिक रैलियों का रेकॉर्ड बनाया है। लोकसभा चुनाव में इसके जरिए होने वाली रैलियों का आंकड़ा एक हजार तक पहुंचाने का प्रयास किया गया। पार्टी को लग रहा है कि यदि एक हजार रैलियां हो जाती हैं तो उसके बाद देश–विदेश में कोई दल या संगठन इस रेकॉर्ड को तोडने़ की कोशिश भी करे तो उसे एक हजार से ज्यादा रैलियां करनी होंगी। गुजरात से इसका प्रारम्भ हुआ, थ्री डी होलोग्राफिक रैलियों को बीजेपी ने मोदी की सभा नाम दिया है। गुजरात के बाहर पहली बार इस तरह की तकनीक के जरिए रैलियां की गई। इससे पहले गुजरात में विधानसभा चुनाव में पहली बार यह प्रयोग किया गया था। लेकिन उस वक्त कुछ जगह पर ही एक साथ मोदी की रैली होती थी। लोकसभा चुनाव में एक साथ डेढ़ सौ से दो सौ जगह पर भी रैली की गई। इस तरह से एक साथ मोदी देश के कई हिस्सों में लोगों से रूबरू हुए हैं।

दी इकोनोमिक टाइम्स में दिनाँक 21 जनवरी 2015 को प्रकाशित समाचार के अनुसार लोकसभा चुनाव 2014 में बीजेपी ने मोदी की 3 डी सभाओं के द्वारा प्रचार पर 61 करोड़ रुपये से उपर खर्च किए । इसके अलावा अन्य ऑडियो वीडियो केम्पैन एवं सोशल मीडिया पर लगभग 304 करोड़ रुपये खर्च किए गये। यह ऐसी टेक्निक है कि मोदी एक जगह से संबोधित करते हैं और देश के कई हिस्सों में उनकी रैली होती है। अहम यह है कि हर जगह दर्शकों को यह दिखता है कि मोदी उनके सामने मंच पर बोल रहे हैं, जबकि मोदी सिर्फ एक ही जगह होते हैं। बीजेपी के ऑफिस सेक्रेटरी इंजीनियर अरुण कुमार जैन का कहना है कि इस तकनीक का जोरदार पहलू यह है कि मोदी अगर अहमदाबाद से रैली को संबोधित कर रहे हैं और वहां बोलते–बोलते वे पसीना पोंछते हैं या पानी भी पीते हैं तो जिन जगहों पर उस रैली का प्रसारण हो रहा है, वहां भी दर्शकों को ऐसा लगता है कि उनके मंच पर खड़े मोदी गिलास उठाकर पानी पी रहे हैं।

इसके तहत इमेज और वाइस दोनों को ही उठाकर दूसरी सभी जगहों पर एक साथ ट्रांसमिट किया जाता है। दरअसल, जहां भी मोदी की रैली दिखानी होती है, वहां मंच पर इस तरह से लाइटिंग और वेव के जरिए टेलिकास्ट होता है कि लोगों को साक्षात मोदी दिखते हैं। हालांकि अगर वहां जाकर कोई हाथ से छूना चाहे तो उसे वह जगह खाली मिलेगी, लेकिन देखने में मोदी खड़े हुए मिलेंगे। जैन का कहना है कि पहली बार 18 नवंबर 2012 को मोदी के लिए गुजरात में यह ट्रायल हुआ था और उनका भाषण चार जगह किया गया। इसके बाद 53 जगह प्रयोग हुआ, लेकिन अब यह 104 जगह फिर 93 और फिर 123 जगह भी उनका भाषण इस तकनीक से हुआ। इसके जरिए हर शो पर लगभग 15 से 35 लाख रुपये खर्च होते हैं।

मोदी भले ही अहमदाबाद से बोल रहे हों, लेकिन उन्हें कुछ जगह के सीन दिखते हैं। दरअसल, जिस जगह से मोदी बोलते हैं, वहां कुछ स्क्रीन भी लगाई जाती हैं, जहां वे कुछ जगह एकत्र भीड़ को सीधे देख सकते हैं। ऐसे में वे उन इलाकों की खासियत देखकर भी रैली में बोलते हैं। इन प्रोग्राम्स के को–ऑर्डिनेटर

प्रदीप खुल्लर का कहना है कि जिन जगहों पर यह सभा होनी होती है, वहां 40 फुट चौड़ा और 30 फुट उंचा मंच बनाया जाता है। इस तकनीक की खासियत यह भी है कि जिस जगह बिजली और मोबाइल का सिग्नल न भी हो तो वहां भी यह रैली हो सकती है। इसकी वजह यह है कि इसका पूरा ट्रांसमिशन सेटेलाइट के जरिये होता है।

खुल्लर के मुताबिक यह कार्यक्रम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रेकॉर्ड में दर्ज हो चुका है, लेकिन अभी बीजेपी का टारगेट है कि इस तरह की कुल एक हजार रैली हों। फिलहाल 525 रैलियां हो चुकी हैं। बीजेपी नेताओं का कहना है कि इस टेक्निक का फायदा यह है कि जहां मोदी नहीं जा सकते, वहां इस तरह की रैलियां की जाती हैं. ताकि हर कोने तक मोदी पहुंचकर लोगों को अपनी बात बता सकें। मोदी के 3–डी संबोधन की जिम्मेदारी दिल्ली की इवेंट मैनेजमेंट कंपनी ऑरेंज इवेंट एंड प्रोडक्शन को सौंपी गई है। जहां से मोदी संबोधित करेंगे उस मंच के अंदर 3–डी प्रोजेक्टर लगा होगा, जो सेटेलाइट के माध्यम से सिग्नल प्राप्त कर मोदी के संबोधन के दौरान 3–डी छवि प्रसारित करेगा। इसे देखने वालों को ऐसा लगेगा कि मंच से खुद नरेंद्र मोदी ही संबोधित कर रहे हैं।

3–डी का अर्थ होता है थ्री डायमेंशनल टेक्निक। यह फिल्मी दुनिया की सबसे आधुनिक उच्च कोटि की टेक्निक है। थ्रीडी फिल्म चलचित्र है। इसकी तस्वीर सामान्य चलचित्रों से अलग रहती है। इसके लिए विशेष मोशन पिक्चर कैमरे का प्रयोग किया जाता है। असल में यह केवल छाया प्रदर्शन मात्र होता है। फिल्मांकन के लिए प्रायः 90 डिग्री पर स्थित दो कैमरों का एक साथ प्रयोग कर चित्र उतारे जाते हैं और साथ में दर्पण का भी प्रयोग किया जाता है। दर्शक थ्रीडी फिल्म में साथ दो चित्रों को एक ही महसूस करते हैं और वह उसे त्रिआयामी लगती है। लोगों को ऐसा लगता है जैसे सबकुछ उनके सामने ही हो रहा है। आजकल चैनलों पर चुनाव लड़ा जा रहा है, जीता जा रहा है। यह जनतंत्र की जीत नहीं पराजय है। एक जमाना था, जब जनता से जुडना़ और जनता के बीच में दिखना राजनेताओं की प्रकृति थी। आज टेलीविजन पर दिखना, ज्यादा से ज्यादा अपने प्रतिद्वंद्वी को छोटे पर्दे पर पछाडना़ विशेषता बन गया है। इस बार के लोकसभा चुनाव परिणाम मूलतः टेलीविजन प्रचार की जीत है। इन्हें किसी पार्टी या विकास के एजेंडे की जीत समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- लोकमत या जनमत निर्माण की विशेषताएं एवं सिद्धांत, https://www.scotbuzz.org/2017/05/lokamat-ya-janamat-nirman.html 10- 5- 2017
- तिवारी, ममता (2012), चुनाव, लोकतंत्र और मीडिया, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 50
- जगदीश चतुर्वेदी, 2009 लोकसभा चुनाव और मीडिया, पृष्ठ 9–10
- जगदीश चतुर्वेदी, 2009 लोकसभा चुनाव और मीडिया, पृष्ठ 33–35
- लोकमत या जनमत निर्माण की विशेषताएं एवं सिद्धांत, https://www.scotbuzz.org/2017/05/lokamat-ya-janamat-nirman.html 10- 5- 2017
- नवभारत टाइम्सः April 26, 2014,
- जगदीश चतुर्वेदी, 2009 लोकसभा चुनाव और मीडिया, पृष्ठ 93

❖◆❖